श्रमणवर्ग में अनुशासनहीनता पर नियन्त्रण

श्रमणसंघीय महामंत्री श्री सौभाग्यमुनि जी 'कुमुद'

श्रमण-श्रमणी वर्ग में भी कई बार अनुशासनहीनता दृग्गोचर होती है। उनको अनुशासन में रखने हेतु 'आवस्सहि' आदि दशविध समाचारी का विधान है। ये अनुशासन के मौलिक सूत्र है। साधु-साध्वी के धर्मानुशासन एवं जिनाज्ञा में न रहने के अनेक कारण हो सकते हैं, उनमें अयोग्यदीक्षा, ज्ञानाभाव आदि चार का उल्लेख विद्वान् सन्त ने किया है तथा अनुशासन में रहने के प्रशिक्षण की आवश्यकता बतायी है। **-सम्पादक**

अनुशासन के मौलिक सूत्र

श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने चार तीर्थ की स्थापना की, उसमें सर्वप्रथम तीर्थ स्वरूप श्रमण वर्ग को लिया, तदनन्तर श्रमणी और श्रावक-श्राविका रूप तीर्थों की रचना की।

श्रमण-श्रमणी धर्मशासन और गुरु के अनुशासन में रहे, इसके लिए अनेक आवश्यक निर्देश किये गये जो शास्त्रों में संकलित हैं। जो साधक आत्म-कल्याण की सर्वोत्कृष्ट साधना में संलग्न होना चाहता है उसे ही श्रमणधर्म में आना चाहिए। परमार्थ साधना ही श्रमण का लक्ष्य होता है। परमार्थ आराधना के दुरूह मार्ग पर अग्रसर होते समय साधक के सामने गुरु का आदर्श उपस्थित रहता है। गुरु के दिशा-निर्देशन में ही श्रमण की पारमार्थिक आराधना सम्पन्न होती है। गुरु के दिशा-निर्देशन की सार्थकता शिष्य द्वारा आचरित अनुशासन में ही निहित है। गुरु का अनुशासन यथार्थ में तो पारमार्थिक आत्म-साधना के लिए ही होता है, किन्तु व्यवहार जिसमें जीवन की अधिकांश गतिविधियाँ संचालित होती हैं उसमें भी गुरु का अनुशासन नितान्त आवश्यक होता है, क्योंकि निश्चय के निर्माण में व्यवहार भी सहायक सिद्ध होता है यह अनुभव-सिद्ध यथार्थ है।

'आणाए धम्मो' गुरु और तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा के अनुसरण में ही धर्म का तत्त्व निहित है यह अनुशासनसूत्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए उपयोगी है।

'गच्छतः स्खलनम्' चलता हुआ कभी ठोकर भी खा जाता है, कभी मार्गच्युत भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में गुरु के आवश्यक निर्देश ही साधक के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। अपनी त्रुटियों को समझकर गुरु-आज्ञा के अनुसार शिष्य अपना शुद्धीकरण करता है और पुनः सन्मार्ग पर समारूढ़ हो जाता है।

दशविध समाचारी

'आणाए धम्मो' यह एक समुच्चय सूत्र है। यद्यपि साधक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह सूत्र उपयोगी सिद्ध होता है फिर भी श्रमण-जीवन के कुछ ऐसे अंग हैं जिनके विषय में शास्त्रों में कुछ अलग तरह के निर्देश भी उपलब्ध हैं, उनमें दश समाचारी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिष्य-शिष्याओं द्वारा जहाँ-जहाँ अनुशासन में क्षीणता

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

का सर्वाधिक अंदेशा है उन स्थानों पर अनुशासन के लिए ये विशेष सूचना और व्यवस्थाएँ दी गई हैं।

साधु-साध्वी जी जहाँ अपने गुरु-गुरुणी के साथ रहते हैं उस उपाश्रय अथवा स्थानक से कहीं बाहर जाना और आना कई बार मनमाना हो जाता है। जब मन हुआ स्थानक से कहीं निकल गये, जब मन हुआ आ गये। अनेक बार यह स्वतन्त्रता, स्वच्छंदता पनप जाती है। गुरु समझते हैं शिष्य अपने स्थानक पर ही होगा और जब देखते हैं तो शिष्य का कोई अता-पता ही नहीं मिलता तो यह साधक जीवन में अव्यावहारिक और विडम्बना जैसा हो जाता है। इस विडम्बना को समाप्त करने के लिए **'आवस्सहि'** और **'निस्सहि'** रूप समाचारी के निर्देश हैं। इसका अर्थ है स्थानक से बाहर जाने के पहले गुरु से आज्ञा लें और आकर भी गुरु को अवगत कराएं कि मैं आ गया हूँ।

शिष्य-शिष्याएँ अनेक बार गुरु-गुरुणी को पूछे बिना ही कोई निर्णय ले लेते हैं, इसमें गुरु की अवहेलना तो स्पष्ट ही है, गुत्थी कभी-कभी ऐसी उलझ जाती है कि शिष्य का निर्णय और गुरु का निर्णय मेल नहीं खाता है तो परस्पर वैमनस्य की स्थिति भी बन सकती है, ऐसी विसंगति गुरु-शिष्य के मध्य उपस्थित न हो, इसके लिए **'आपुच्छणा, पडिपुच्छणा'** का विधान दिया है। प्रत्येक निर्णय गुरु को पूछकर करना उसमें भी कोई अवान्तर स्पष्टता करना हो तो गुरु को पुनः-पुनः पूछ लेना भी आवश्यक है।

अनेक बार गुरु स्पष्ट रूप से कोई बात कहे यह सम्भव नहीं होता। सुयोग्य शिष्य गुरु की भावनाओं को समझकर तदनुरूप व्यवहार करता है, अपनी स्वच्छन्दता को एक तरफ रखकर गुरु की भावानुसार वरतना यह **'छन्दणा'** नामक समाचारी है। यह एक मनोवैज्ञानिक समाचारी है। सुयोग्य चतुर शिष्य ही इस समाचारी की विधिवत् आराधना कर सकता है। इसी तरह एक समाचारी है **'इच्छाकार'**। गुरु से निवेदन कर पूछा जाये कि आपकी इच्छा क्या है। मेरी इच्छा का कोई महत्त्व नहीं, आपकी इच्छा ही सर्वोपरि है।

एक समाचारी है **'मिच्छाकार'**, यह विनम्रता और आत्म-शुद्धि की समाचारी है। अपने आहार-विहार आदि व्यवहारों में जहाँ कहीं भी स्खलना हो जाये, गुरु के समक्ष उन्हें उपस्थित कर उनका परिमार्जन करना। श्रमणधर्म के अनुपालन में यह समाचारी श्रमणधर्म की शुद्धि की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

गुरु की आज्ञा और शास्त्राज्ञा जो भी है उन्हें उसी रूप में आत्मसात् करते हुए श्रमणधर्म की आराधना में मग्न रहना यह **'तहकार'** नामक समाचारी है।

श्रमण-श्रमणी ही नहीं समस्त चतुर्विध संघ में विनय का सर्वाधिक महत्त्व है। विनय को शास्त्रों में धर्म का मूल कहा है। विनय की उपस्थिति में ही सारे विधान और सारी साधनाएँ फलित होती हैं अतः नवीं समाचारी विनय स्वरूप **'अब्भुट्ठाण'** है। गुरु या रत्नाधिक के प्रति विनयवान होकर रहना। वे अर्थात् गुरु-गुरुणी या रत्नाधिक शिष्य-शिष्याओं के निकट आयें तो न केवल आसन से उठ खड़े हों और उनका सम्मान करें, अपितु सात-आठ कदम सामने जाकर उनका स्वागत करें और वे अपने पास से जायें तो उन्हें सात-आठ कदम पहुँचाने भी जायें। वे जब तक सामने रहें शिष्य नतमस्तक रहे। दसवीं समाचारी **'उवसंपया'** है, यह समाचारी अनेक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस समाचारी के अनुसार शिष्य-शिष्या गुरु-गुरुणी के द्रव्यतः और भावतः उनके निकट, उनकी छत्रछाया में निवास करें। जैसे- सिंह के निकट बैठा हुआ सिंह का छोटा बच्चा जो अनेक दृष्टि से असमर्थ-सा होता है फिर भी उसे न कोई पकड़ सकता है और न उसे कोई कष्ट दे सकता है। गुरु की छत्रछाया में रहने वाला शिष्य भी इसी तरह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरु से संरक्षित होता है। उसे सांसारिकता के व्याल पथच्युत नहीं कर सकते, क्योंकि गुरु का सान्निध्य जो उसे प्राप्त है।

अनुशासन के ह्रास का प्रश्न

उक्त समाचारी का विधिवत् पालन ही श्रमणधर्म का अनुशासन है। जहाँ कहीं भी उक्त समाचारी की उपेक्षा होती है, वहीं अनुशासन भंग होता है। साधु समाज में संघ, गच्छ, गण, समुदाय आदि सारी सामूहिकताएँ समाचारी के अनुपालन पर ही आधारित हैं, जहाँ इसका क्षय होगा वहीं संघ, गच्छ या गण के अनुशासन में भी क्षीणता आ जायेगी।

आज संघ या समाज में अनुशासन ह्रास का प्रश्न सामने खड़ा है। स्खलनाओं के छिद्र बढ़ते जा रहे हैं। व्यवस्थाएँ कठिनाई से बन पाती हैं। बनकर भी टिक पाना कठिन हो रहा है, समाचारी अनुशासन का भंग हो रहा है तो इसके कुछ ऐसे कारण हैं जिन पर संक्षिप्त में विचार कर लेना आवश्यक है।

(1) अयोग्य दीक्षा

श्रमणधर्म की आराधना मुक्तिमार्ग की आराधना की सर्वोत्कृष्ट साधना है। जो भी मुमुक्षु इस महामार्ग की साधना के लिए सम्प्रेरित हो उसका वैराग्य अन्तःस्फुरित, सुस्पष्ट और सम्पुष्ट होना चाहिए। श्रमणचर्या का कम से कम सामान्य बोध उसे वैराग्यावस्था में भी हो जाना चाहिए। साधुधर्म के विनय और अनुशासन का पाठ वह दीक्षित होने के पहले अच्छी तरह पढ़ ले। साधुधर्म के प्रति उसका उत्साह अगाध और निश्चल हो, ये सब विशिष्टताएँ हों तो ही उसे साधु-पर्याय के योग्य समझा जाये। ऐसा नहीं होकर बिना किसी पात्रता के या अपरिपूर्ण पात्रता के दीक्षित कर दिया जाये तो अनुशासनबद्धता की आशा करना दुराशा मात्र है। अतः समस्त गुरुजन जो दीक्षाएँ प्रदान करते हैं, मुमुक्षु की योग्यता का अंकन अवश्य करें। सुपात्र शिष्य ही गुरु और जिनशासन के अनुशासन का पालन कर सकेगा।

(2) ज्ञानाभाव

शास्त्रों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जो भी जहाँ कहीं दीक्षित हुए, दीक्षा लेकर उन्होंने सर्वप्रथम द्वादशांगी का अध्ययन किया। यह परिपाटी आज विलुप्त-सी हो गई है। शास्त्रों का अध्ययन नहीं होने से नवदीक्षित साधु संयमधर्म की परमार्थता और उसके सूक्ष्म परिणमन को विधिवत् समझ नहीं पाता, शास्त्रीय रीति-नीति का ज्ञान भी उसे जो व्यवहार में दिखाई देता है उतना ही हो पाता है उससे आगे गम्भीर तत्त्व-ज्ञान का उसमें अभाव रहता है। इससे उसमें स्खलनाओं को समझना, उससे बचना इसका जो विशेष बोध होता है वह नहीं हो पाता, अतः दीक्षा देने के बाद नव-दीक्षितों को शास्त्रों के अध्ययन की तरफ प्रवृत्त करना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि श्रमण शास्त्रों से भिन्न कोई अध्ययन न करे। शासन-प्रभावना के लिए उसके पास बहुआयामी अध्ययन होना चाहिए, किन्तु वह अध्ययन शास्त्रज्ञान के उपरान्त हो। केवल अन्य व्यावहारिक अध्ययन हो जाये और शास्त्रज्ञान नहीं होगा तो श्रमणधर्म में अनुशासन और उस धर्म की आराधना दोनों की क्षति हो सकती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(3) कर्म विपाकोदय

कभी-कभी सुपात्र और सुयोग्य दीक्षित श्रमण भी चारित्र और अनुशासन में स्खलना करता हुआ दिखाई देता है तो इसमें उसका पूर्व कर्म का विपाकोदय भी सम्भव है। यद्यपि यह एक परोक्ष प्रकृति है, किन्तु कर्मवाद में विश्वास रखने वाले प्रत्येक आस्तिक को कर्म शक्ति के प्रभाव में निःशंक प्रतीति होती है। ऐसी स्थिति में गुरु अपने सम्यक् मार्गदर्शन से शिष्य को सन्मार्ग में स्थापित करने का प्रयत्न करे, साथ ही उसे कुछ ऐसा अनुष्ठान दे जिसकी आराधना से उसका विपाकोदय निर्जरा के रूप में निर्जरित हो जाये और पतन मार्ग पर बढ़ता शिष्य पुनः सन्मार्ग का आराधक बन जाये।

(4) रत्नाधिकों का प्रमाद

साधु-साध्वी जी जहाँ भी रहते हैं वहाँ जो भी रत्नाधिक गुरु, आचार्य, पदवीधर या बड़े होते हैं, उनकी प्रवृत्तियाँ शिष्य-शिष्याओं को अवश्य प्रभावित करती हैं। यदि आचार्य, गुरु या रत्नाधिक संत-सती जी का व्यवहार शास्त्राज्ञा-विरुद्ध, मान्य परम्परा और लोक-व्यवहार विरुद्ध होता है या विधि-व्यवहार संशयपूर्ण होते हैं तो शिष्य-शिष्याओं में भी अनुशासनहीनता और मनमानापन पनपता है। ऐसे आचार्य या गुरु अपने शिष्यों को अनुशासन में नहीं रख पाते। उनमें ऐसी प्रखरता ही नहीं होती कि शिष्य को स्पष्ट रूप से कुछ समझा सकें। ऐसे आचार्य और गुरु स्वयं ही हीनभावना से ग्रस्त रहते हैं। वे अपने शिष्यों पर प्रभविष्णुता का प्रयोग नहीं कर सकते। शिष्य वर्ग में अनुशासनबद्धता के लिए आचार्य और गुरु का व्यवहार निःशंक, प्रखर और स्पष्ट शास्त्रानुसार और पारम्परिक होना चाहिए। संघ, गण और गच्छ में सम्यक् व्यवस्था वे ही आचार्य और गुरु स्थापित कर सकते हैं जो स्वयं सुदृढ़ व्यवस्थावादी हैं।

यह सत्य है कि पारम्परिक व्यवहार या शास्त्र निर्देशों में भी कभी-कभी देश, काल, परिस्थितिवश परिवर्तन आवश्यक हो जाता है, किन्तु ऐसा परिवर्तन आचार्य स्वय या गुरु स्वय ही न कर बैठे। ऐसे परिवर्तन के लिए शिष्य-समुदाय प्रमुख साधु यहाँ तक कि प्रमुख श्रावक-श्राविकाओं के साथ भी खुली चर्चा होनी चाहिए। सर्व सम्मति से किया गया परिवर्तन न अनुशासनहीनता होगा और न शास्त्रों द्वारा विरुद्ध। शिष्यों पर उसका कुप्रभाव भी नहीं होगा।

अनुशासन प्रशिक्षण

अभिनव साधु-साध्वी जी को समय-समय पर अनुशासन प्रशिक्षण भी मिलना चाहिए। अनुशासन की उपयोगिता, उसके फलितार्थ भी मिलना चाहिए। अनुशासन की उपयोगिता, उसके फलितार्थ अनुशासन में विकास, अनुशासन में सर्वांगीण सफलताएँ आदि का ज्ञान दीक्षितों को समय-समय पर मिलते रहने पर उनमें अनुशासन की भावना प्रगाढ़ बनती है और वे स्वयं अनुशासन के महत्त्व को आत्मसात् करते हैं।

आचार्य और रत्नाधिक स्वयं अनुशासन का आदर्श उपस्थित करते रहें, इसमें भी संघ के सभी तीर्थों में अनुशासनबद्धता की भावनाएँ जगती हैं और संघ, समाज और गण की सुव्यवस्था बनी रहती है।

-'अमृत-पुरुष' ग्रन्थ से साभार

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org